Various Dimensions of Social Culture

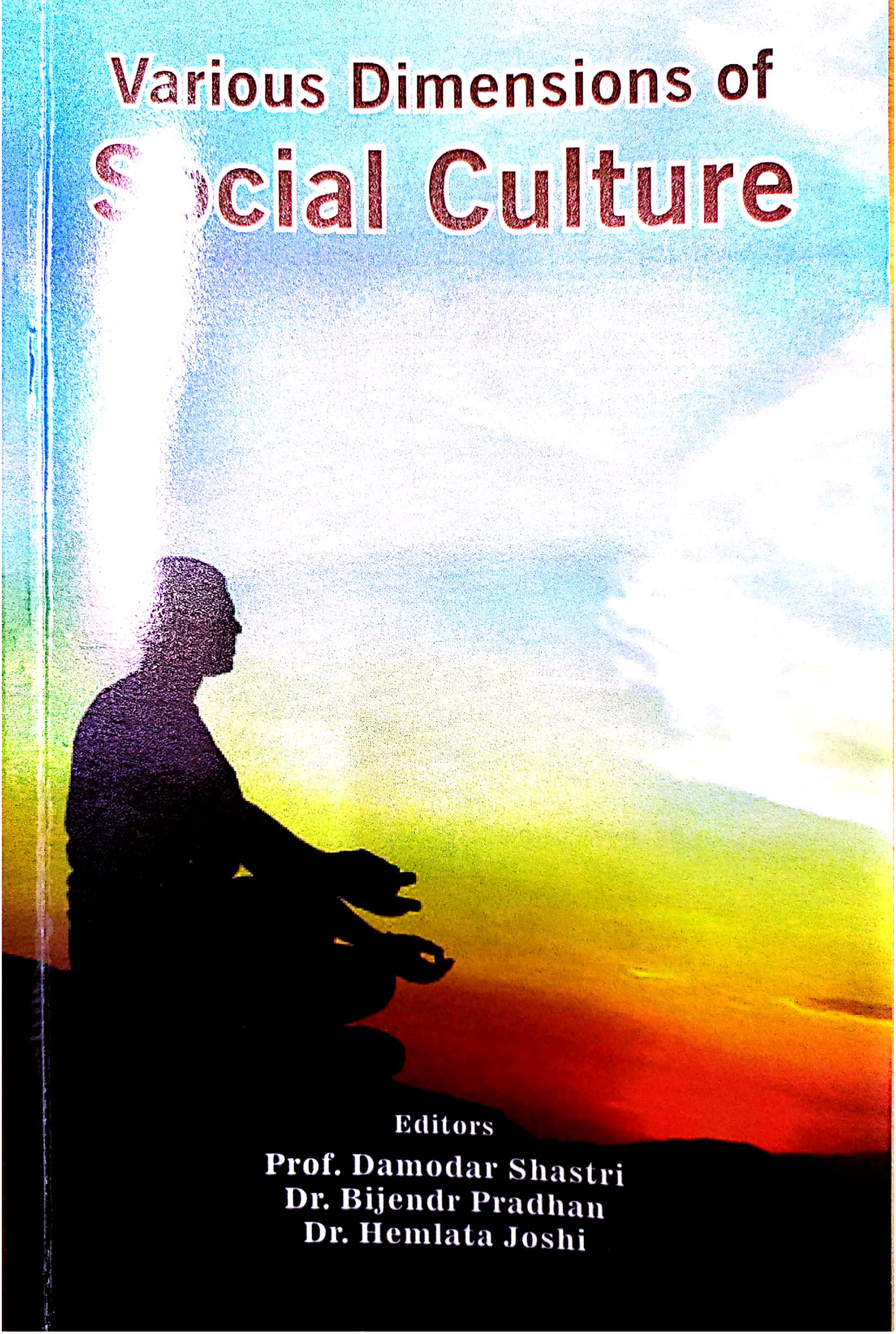

Editors
Prof. Damodar Shastri
Dr. Bijendr Pradhan
Dr. Hemlata Joshi

Scanned by CamScanner

Various Dimensions of Social Culture

Editors

Prof. Damodar Shastri
Dr. Bijendr Pradhan
Dr. Hemlata Joshi

Jain Vishva Bharati Institute
(Deemed University)
Ladnun-341306 (Rajasthan) India

Scanned by CamScanner

Various Dimensions of Social Culture

ISBN 978-93-83634-46-0

Editing Teem 2019

Editors: Prof. Damodar Shastri
Dr. Bijendra Pradhan
Dr. Hemlata Joshi

First Edition: September, 2019

Price: 350/-

Published by: Jain Vishva Bharati Institute
(Deemed University)
Ladnun-341306 (Rajasthan) India
www.jvbi.ac.in

Printed by: Nagar Printing Press, Kota

Scanned by CamScanner

अनुक्रमणिका

Section A- English Articles

Climate Change and Sustainability in Post Paris Agreement Era 03-09

Ankit Sharma

Solar energy –A Renewable energy resource 10-15

Mukul Saraswat

Enhancing Professional Capacity to Literate B.Ed. Trainees with ICT in Teaching Pedagogy: A Study 16-27
(With reference to National Policy on Education, 2016)

Dr. Bhabagrahi Pradhan

Role of ICT in Social Work Education & Practices 28-37

Dr. Pragati Bhatnagar

Prospects of Inclusive Education 38-48

Dr. Manish Bhatnagar

Challenges for Sustainable Development: Global Perspective 49-56

Dr. Vikas Sharma

खण्ड – ब : हिन्दी आलेख

1. **चेतना और कायोत्सर्ग का अन्तः–सम्बन्ध : जैनदर्शन के संदर्भ में** 59–66

डॉ. योगेश कुमार जैन

2. **आतापना योग : एक विशिष्ट जैन साधना** 67–75

डॉ. सुनीता इन्दौरिया

3. **वेदों में सृष्टिविज्ञान के सूत्र** 76–86

डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज

Scanned by CamScanner

वेदों में सृष्टिविज्ञान के सूत्र

डॉ. सत्यनारायण भारद्व

सहायक आ
प्राकृत एवं संस्कृत वि
जैन विश्वभारती संस्थान, ल

सारांश

भारतीय संस्कृति में वेदों का स्थान अत्यन्त उत्कृष्ट है साथ ही वि साहित्य के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथों के रूप में भी वेदों का स्थान निता गौरवपूर्ण है। वेद किसी एक साहित्यिक रचना का नाम नहीं है, वरन् भारत मनीषियों ने इन्द्रियदमन पूर्वक वर्षों के स्वाध्याय और तप से जिस ज्ञानरा को प्राप्त किया था, उसका संग्रह वेदों में उपलब्ध होता है। वेद के द्वारा मनुष्य आत्मा, परमात्मा और संसार की उत्पत्ति एवं उसके स्वरूप को जान में समर्थ होता है। आज हमारे समक्ष अनेक यक्ष प्रश्न उपस्थित हैं उनमेंसे सब महत्त्वपूर्ण प्रश्न ये हैं कि इस जगत् का निर्माण कैसे हुआ? यह सृष्टि कैसे बनी कौन से प्रमुख तत्त्वों के संयोग से इस जगत् का निर्माण हुआ है? सृष्टि–प्रक्रि में सर्वप्रथम किसका निर्माण हुआ? अनेक प्रश्न हैं, जो आज विश्व के साम उपस्थित हैं और अनेक विद्वान् आज इन प्रश्नों के उत्तर ढूढ़ने का प्रयास क रहे हैं और वेद उनके इन प्रश्नों को सम्यक् प्रकार से समाधान देने में सम प्रतीत होते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक मत प्रचलित हैं। कोई इस जग को स्वप्नवत् मिथ्या मानता है तो कोई बिना निमित्त के ही सृष्टि की उत्प मानता है। कोई जगत् को शून्य से उत्पन्न मानता है तो कोई इस जगत् क अनादि–अनन्त मानता है लेकिन वेदों के अनुसार इस सृष्टि का कोई कर्त्ता और यह जगत् सप्रयोजन है। वेदों में सृष्टि–उत्पत्ति का क्रम प्राप्त होता है ए अनेक ऐसे सूत्र प्राप्त होते हैं, जिनसे सृष्टि–उत्पत्ति की प्रक्रिया को समझ में आसानी हो जाती है।

मुख्य शब्द– वेद, सृष्टिविज्ञान, सृष्टि–प्रक्रिया, सृष्टि–उत्पत्ति में कारण, महाभूत तन्मात्राएं।

Scanned by CamScanner

भूमिका :

संसार में मानव–पदार्पण के साथ ही उसके मस्तिष्क में इस प्रकार के प्रश्न जन्म लेते रहे हैं कि यह विश्व कैसे बना? प्रारम्भ में क्या था? किस प्रकार इन सूर्य, नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि का निर्माण हुआ? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए प्राचीनकाल से ही विभिन्न मानवीय सभ्यताओं के विद्वानों ने अथक प्रयास किये हैं। मध्यपूर्व (2700 ई.पू.) की परिकल्पनाओं के अनुसार इस सृष्टि का उद्भव देवी–देवताओं से सम्बद्ध है। अवेस्ता (600 ई.पू.) ने संसार की उद्भव–प्रक्रिया में सात लोकों का निर्माण माना है। चीनी विद्वानों (300 ई.पू.) के अनुसार ब्रह्माण्ड के दो भागों में टूटने से द्युलोक और पृथ्वीलोक बने हैं। जापानी धर्म के अनुसार (800 ई.पू.) सृष्टि से पूर्व एक तैल से परिपूर्ण समुद्र था, जिससे देवी–देवताओं तथा उनके बाद संसार का निर्माण हुआ। इनके पश्चात् बाइबिल की कल्पना प्रसिद्ध हुई कि छः दिनों में सम्पूर्ण संसार का निर्माण हुआ है।[1] गत तीन शताब्दियों में पाश्चात्य दार्शनिकों ने निरन्तर अवलोकन, अन्वेषण के पश्चात् सृष्टि–निर्माण की निर्दिष्ट परिकल्पनाओं को निराधार सिद्ध करने के साथ–साथ अभाव से भाव की धारणा को भी सदा के लिए निरस्त कर दिया।

सृष्टि–उत्पत्ति के संदर्भ में सम्पूर्ण जगत् में चार प्रकार की मान्यताएं प्रचलित हैं :–

1. नवीन वेदान्ती जगत् को स्वप्नवत् मिथ्या मानते हैं।
2. कुछ नास्तिक विचारधाराओं के लोग हैं, जो अभाव से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं– **"अभावात् भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्भ्य प्रादुर्भावात्।"**[2] इनके दूसरे साथी कहते हैं कि **"अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात्।"**[3] अर्थात् बिना किसी निमित्त के ही जगत् उत्पन्न हो गया। इन्हीं के तीसरे साथी कहते हैं कि एक शून्य ही तत्त्व है और उस शून्य से जगत् उत्पन्न हुआ और इसी में समा जाता है– **"शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य।"**[4]
3. तीसरे मतवादियों के अनुसार जगत् अनादि और अनन्त है। वह न उत्पन्न हुआ है और न ही नष्ट होगा– **सर्वं नित्यं पंचभूतनित्यत्वात्।**[5]
4. चौथे मतवादियों के अनुसार जगत् का कोई स्रष्टा है और यह जगत् सप्रयोजन है।

Scanned by CamScanner

इन चारों मतों की समीक्षा करने पर क्रमशः यह निष्कर्ष निकलता कि यदि नवीन वेदान्तियों के मत को स्वीकार किया जाये तो हमें मानव चेतना की ही मीमांसा करनी पड़ेगी कि मानव में चेतना भी है या वह भी स्व ही है। इस वाद के वक्ता भी स्वप्नवत् मिथ्या है या यथार्थ। यदि वे भी मिथ ही हैं तो ऐसे मिथ्या सिद्धान्त पर चर्चा करना ही मिथ्या है।

दूसरे मतवादी (नैयायिक) पदार्थ और ऊर्जा के अस्तित्त्व को ही अभ से उत्पन्न बताते हैं। यह विचार भौतिक विज्ञान के विरुद्ध और तर्कशून्य क्योंकि अभाव से कभी भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

तीसरा मत भी प्रत्यक्ष दर्शन के विरुद्ध है, क्योंकि घट–पट, मनुष्य पशु–पक्षी आदि का उत्पन्न होना और नष्ट होना प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है, त उन्हें नित्य कैसे कह सकते हैं? पृथ्वी, सूर्य आदि जो वस्तुएं बनी हैं, वे न भी होती हैं बुद्धिपूर्वाकृति स्वाभाविक नहीं हो सकती।

ऊष्मागतिकीय नियमानुसर सृष्टि का आदि और अन्त है। इसलि इसका एक सर्वज्ञ, शक्तिमान स्रष्टा अवश्य होना चाहिए। पृथ्वी की तीन गति उसका क्षेत्रफल, वायुमण्डल एवं उसका दाब, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्रादि स्थिति, मिट्टी, पानी, पेड़–पौधे आदि के विशेष गुण, सृष्टि की सप्रयोजता प्रकाश डालते हैं। इसलिए उसको अकस्मात् उत्पन्न नहीं कहा जा सक अतः सृष्टि–निर्माण में चौथा मत ही बुद्धिसंगत, पूर्णतया वैज्ञानिक वेदानुकूल प्रतीत होता है।

वैदिक सृष्टि–प्रक्रिया

वैदिक मान्यतानुसार सृष्टि का कर्त्ता परमेश्वर है। वेदों में इसके अने प्रमाण मिलते हैं। कुछ यहां द्रष्टव्य हैं–

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अंगवेद यदि वा न वेद।।[6]

अर्थात् जिससे यह विविध सृष्टि उत्पन्न हुई है, जो इसका धारण प्रलय करता है, वही इसका अध्यक्ष है। यह सृष्टि आकाश के समान सर्वव्याप परमात्मा में स्थित है और अन्त में प्रलय को प्राप्त होती है।

इसी विचार के समर्थन में एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है–

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषाविधेम।।[7]

Scanned by CamScanner

अर्थात् 'हिरण्यगर्भ' सम्पूर्ण जगत् को परिभाषित करने वाला परमेश्वर सृष्टि के पूर्व भी विद्यमान था। वह सब जगत् का स्वामी है। वही पृथ्वी लेकर द्युलोक पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है।

यजुर्वेद से एक सूक्त यहां प्रस्तुत है, जिसमें भी ईश्वर को ही सृष्टि कर्त्ता बताया गया है–

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।[8]

अर्थात् पुरुष जो पूर्ण है और जिसकी व्याप्ति से यह जगत् पूर्ण बना है, वही परमेश्वर भूत, भविष्यत्, वर्तमान से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का यिता है। वही इस पर शासन कर रहा है। वही अमृत (मोक्ष) देने वाला है। जगत् में भी व्याप्त है और उसके परे भी।

छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि उसी परमात्मा की इच्छा मात्र से जगत् प्रकाशित होता है। मानव के अन्तःकरण में ज्ञान के प्रकाश की मना से ही वह इस जगत् का निर्माण करता है– **"तदैक्षत बहु स्यां जायेयेति।"**[9]

ष्टि–उत्पत्ति में कारण

ईश्वर, जीव और प्रकृति सृष्टि की उत्पत्ति में प्रमुख कारण है। प्रमुख तीन रणों में प्रथम–निमित्त कारण, वो परमात्मा है, दूसरा उपादान रण–त्रिगुणात्मक प्रकृति है तथा तीसरे साधारण कारण में वस्तु के निर्माण में हायक सामग्री, जैसे– दिशा, काल, आकाश, ज्ञान, बल, हाथ–पैर आदि रिगणित हैं।

वैदिक मान्यतानुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति का सम्बन्ध अनादि है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्तिअनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।[10]

अर्थात् ब्रह्म और जीव दोनों चेतना और पालन आदि गुणों में सदृश, व्याप्य–व्यापक भाव में संयुक्त, परस्पर मित्रवत् और सनातन हैं। वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलकारण और शाखा रूप में अनादि कारण प्रकृति है।

यजुर्वेद के इस उदाहरण में भी इसी तथ्य का समर्थन किया गया है–

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।[11]

Scanned by CamScanner

सांख्यदर्शन के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति महत्तत्त्वादि से हुई **"सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहं पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूल– भूतानि।"**[12] अर्थात् सत्त्व, और तमस्–इन तीनों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। प्रकृति का प्रथम (विकार) महत्तत्त्व है। महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से पंच तन्मात्राएं और इन्द्रियां तथा पंच तन्मात्राओं से पांच स्थूलभूत उत्पन्न हुए।

महाभूतों का उत्पत्ति–क्रम

अहंकार के भूतादि भेद से जो तमस् प्रधान है उससे शब्दतन्मात्रा उत्पत्ति हुई। शब्द से आकाश, आकाश से स्पर्शतन्मात्रा, स्पर्श से वायु, वायु रूप, रूप से अग्नितत्त्व, अग्नि से रस, रस से जल, जल से गन्धतन्मात्रा गन्धतन्मात्रा से पृथिवी तत्त्व उत्पन्न हुआ। इस प्रकार तमोगुण प्रधान अहं से पांच तन्मात्राओं एवं पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई।

अहंकार के वैकारिक भेद से वाक्, हस्त–पाद, वायु और उपस्थ– पांच कर्मेन्द्रियों तथा इसी प्रकार इसके तेजस् भेद से आंख, कान, नाक, और त्वचा –ये पांच ज्ञानेन्द्रियां उत्पन्न हुईं।

वेदों में सृष्टि–उत्पत्ति–क्रम

वैसे तो सभी वेदों में तात्कालिक अवस्था तथा सृष्टि की उत्पत्ति का यत्र–तत्र बिखरा हुआ है तथापि ऋग्वेद में तत्सम्बन्धी वर्णन अधिक है। ऋ का नासदीय सूक्त तो इस विषय के वर्णन से अत्यधिक सम्पन्न है। पं. मधुसू ओझा ने अपनी कृति 'ब्रह्मविज्ञान' के अन्तर्गत इस सूक्त में वि सृष्टि–प्रक्रिया के विषय को दस वादों में विभक्त किया है। स्वामी दयानन्द भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 'सृष्टिविद्याविषय' नामक प्रकरण के पूर्व सृष्टि–प्रक्रिया विषय के संदर्भ में नासदीयसूक्त को ही उद्धृत किया है।[13]

ऋग्वेद के नासदीयसूक्त में सृष्टि–उत्पत्ति क्रम के विषय को प्रथम में ही इस प्रकार उद्धृत किया गया है–

नासदासीन्नोसदासीत्तदानींनासीद्रजोनोव्योमापरायत्।
किमावरीवः कुह कस्यशर्मन्नम्भः किमासीद्गहनंगभीरम्।।[14]

अर्थात् उस समय (प्रलयावस्था में) न असत् था, न सत् था, पृथ्वी भी न थी और आकाश तथा आकाश में विद्यमान सातों भुवन भी नहीं थे। आवर (ब्रह्माण्ड) भी कहां था? किसका कहां स्थान था? क्या दुर्गम और गम्भीर ज

Scanned by CamScanner

उस समय था? इसी तथ्य का समर्थन इसी सूक्त के दूसरे मंत्र में भी किया गया है, जो निम्नलिखित है–

नमृत्युरासीदमृतंनतर्हिनरात्र्या अह्नआसीत्प्रकेतः।
आनीदवातंस्वधयातदेकंतस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास।।[15]

अर्थात् उस समय न मृत्यु थी और न अमृत, रात और दिन का भेद भी नहीं था। वायु–शून्य और आत्मावलम्बन से श्वास–प्रश्वास युक्त केवल एक ब्रह्म था। उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

सृष्टि के प्रथम में सर्वत्र अंधकार (माया रूपी अज्ञान) से अंधकार (जगत्कारण) आच्छन्न था। सभी अज्ञात और जलमय (अविभक्त) था। अविद्यमान वस्तु के द्वारा एक सर्वव्यापी तत्त्व आच्छन्न था। तपस्या के प्रभाव से वही एक तत्त्व उत्पन्न हुआ–

तमआसीत्तमसागूह्ळमग्रेप्रकेतंसलिलंसर्वमाइदम्।
तुच्छयेनाभ्वपिहितंयदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्।।[16]

निर्दिष्ट वर्णन से स्पष्ट होता है कि उस समय चहुंओर गहन अंधकार का साम्राज्य था क्योंकि उस समय प्रकाशकणों की उत्पत्ति ही नहीं हुई थी। सब ओर अप्रकेत सलिल व्याप्त था। सलिल शब्द गत्यर्थक "षल्" धातु से निष्पन्न है। अतः गति का सूचक है। केवलमात्र वह एक परमब्रह्म ही था, जो इस सृष्टि के निर्माण होने से पूर्व भी विद्यमान था।

दशम मण्डल के अन्य सूक्त में सृष्टि के रचनाक्रम को इस प्रकार बताया गया है–

ऋतंचसत्यंचाभीद्धात्तपसोध्यजायत।
ततो रात्र्यजायततः समुद्रोअर्णवः।।[17]

अर्थात् प्रज्ज्वलित तपस्या से ऋत् (यज्ञ) और सत्य उत्पन्न हुए। इनके बाद, रात्रि और तत्पश्चात् अर्णव समुद्र उत्पन्न हुआ।

'ऋतु' शब्द' ऋगतौ' धातु से निष्पन्न होने के कारण गति का बोधक है। 'सत्य' शब्द– 'होने' के अर्थ में प्रयुक्त तथा 'अस्' धातु से निष्पन्न होने के कारण 'सत्ता' अथवा 'स्थिरता' का बोधक है। रात्रि विराम अर्थात् जड़ता का प्रतीक है। इस प्रकार सर्वप्रथम सत्त्व, रजस् और तमस् उत्पन्न हुए, जो क्रमशः स्थिति तत्त्व, गति तत्त्व तथा जड़ तत्त्व की उत्पत्ति के कारण बने। इसके पश्चात् अर्णव समुद्र अर्थात् ऊर्जा का महासमुद्र उत्पन्न हुआ, जिससे ऊर्जा का

Scanned by CamScanner

आनन्त्य लक्षित है। अर्णव शब्द की निष्पत्ति गत्यर्थक "ऋगतौ" धातु
है, जिसका अर्थ होता है– गतिशील तत्त्वों का समूह– "अर्णांसि सन्
स अर्णवः।"[18] तत्पश्चात्–

समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणिविदधद्विश्वस्यमिषतोवशी।।[19]

जल (ऊर्जा) से भरे हुए समुद्र से संवत्सर उत्पन्न हुआ। जैमिनीय
में संवत्सर का अर्थ इस प्रकार स्पष्ट किया गया है– 'जो तपता है, वह
है'। जो चमकता है वह, 'संवत्' है तथा जो उसके मध्य कृष्णमण्डल
'सर' है।[20] यह चमकना शुक्ल अर्थात् वृद्धि तथा कृष्ण अर्थात् क्षय का
है। इस उत्थान–पतन में स्पन्दन की क्रिया होती है। इस प्रकार संवत्
उत्पत्ति से सृष्टि में स्पन्दन होने लगा।

इसके बाद वशी (परमात्मा) ने अहोरात्र को धारण किया। 'वशी
क्रान्ति अर्थ वाली 'वश्' धातु से निष्पन्न है। इसने अहोरात्र को धारण
लौकिक अर्थ में अहोरात्र का अर्थ दिन–रात होता है लेकिन इसका य
अर्थ नहीं किया जा सकता क्योंकि जब सूर्यादि ही उत्पन्न नहीं हु
दिन–रात की उत्पत्ति कैसे हो सकती है। मैत्रायणी संहिता के अनुसा
शुक्ल है, वह 'अह' का रूप है तथा जो कृष्ण है, वह 'रात्रि' का रूप

इसके पश्चात्–

सूर्याचन्द्रमसौधातायथापूर्वमकल्पयत्।
दिवंचपृथिवींचान्तरिक्षमथोस्वः।।[22]

सूर्य और चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई लेकिन यहां सूर्य और चन्द्रमा का
वर्तमान सूर्य और चन्द्रमा से नहीं है। आ. यास्क ने सूर्य शब्द की व्युत्पत्ति
हुए कहा कि–**"सूर्यः सर्तेर्वा, सुवतेर्वा, स्वीर्यतेर्वा"**[23] अर्थात् गतियुक्त पि
सूर्य है। सूर्य शब्द 'स्वर' शब्द से भी व्युत्पन्न है और स्वर का अर्थ होता
चमकना। अतः सूर्य प्रकाशमान तथा गतियुक्त पिण्ड है। चन्द्रमा से अभि
यहां अन्धकार युक्त पिण्ड से है। ब्राह्मणकार "रात्रिर्वैचन्द्रमा"[24] कहकर
तथ्य की पुष्टि करता है। अतः चन्द्रमस् ऐसे पिण्ड हैं, जिनमें स्वयं प्रकाश न
अपितु वे दूसरों के प्रकाश से चमकते हैं। ये अंधकारयुक्त पिण्ड भी गति यु
है। चन्द्रमा शब्द की निष्पत्ति 'चण्' और 'द्रम्' धातु से होती है और ये दो
ही गत्यर्थक हैं। उक्त सादृश्यों के आधार पर ही वर्तमान में सूर्य–चन्द्रमा क
नाम ग्रहण किया गया है।

Scanned by CamScanner

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सूर्य (आदित्य) की उत्पत्ति हिरण्यगर्भ (परमात्मा) के ऊपरी भाग अर्थात् कपाल से हुई है। उसके कपाल में जो रस भरा हुआ था, उसकी रश्मियां बनीं और कपाल से 'द्यौ' की सृष्टि हुई। आदित्य में वायु, जल और अग्नि परमाणुओं का बाहुल्य है।[25]

प्रकाशमय तथा अन्धकारमय पिण्डों के अनन्तर सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं आकाश आदि का निर्माण हुआ, जो उपर्युक्त मंत्र की द्वितीय पंक्ति में स्पष्ट है। 'दिव' शब्द की मूल धातु ''दिवु द्योतने'' अर्थात् चमकने अर्थ में है जिसका आशय सूर्य तथा उसके समान चमकने वाले अन्य तारों से है। ''पृथ्वी'' पद से पृथिवी तथा उसकी तरह अन्यग्रह, ''अन्तरिक्ष'' का अर्थ–वायुमण्डल तथा 'स्वः' शब्द का अर्थ आकाश किया गया है। पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि **''इयं मे पृथ्वी भूतस्य प्रथमजा''**[26] अर्थात् यह भूमि सभी लोकों में प्रथम उत्पन्न हुई। महत्दण्ड के अधोभाग से इस पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। मनुस्मृति में कहा गया है कि– परिवत्सर (कल्प का 100वां भाग) पर्यन्त महत्दण्ड को ब्रह्म ने अपने ध्यान, जल और वायु के वेग से दो टुकड़ों में तोड़ दिया। उन्हीं टुकड़ों से द्यौलोक और पृथ्वीलोक की उत्पत्ति हुई है। दोनों के मध्य आकाश, आठ दिशाएं और जल का स्थान बनाया–

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनोध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा।।
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिनं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योमदिशश्चाष्टावपांस्थानं च शाश्वतम्।।[27]

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पृथ्वी का निर्माण नौ रूपों में हुआ है। इस पृथ्वी पर क्रमशः फेन, मृत्तिका, शुष्कजल, ऊषर, सिकता, शर्करा, अश्मा, अय–हिरण्य तथा औषधि–वनस्पति उत्पन्न हुई जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी आच्छादित हो गई।[28]

ऋग्वेद में अन्य स्थान पर सूर्य, चन्द्रमा आदि की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है कि उस परम पुरुष के मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि, प्राण से वायु, नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से द्यौ (स्वर्ग), चरणों से भूमि तथा श्रोत्र से दिशाएं आदि उत्पन्न हुए–

चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योअजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्चप्राणाद्वायुरजायत।।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षंशीर्ष्णोद्यौः समवर्तत।
पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँअकल्पयन्।।[29]

Scanned by CamScanner

और अन्त में सभी ग्रह, उपग्रह और नक्षत्रों की उत्पत्ति हुई, जो से मानी गई है–"**ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसंभवाः**।"[18]

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सृष्टि–उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रचलित हैं और सभी मतावादों ने सृष्टि–प्रक्रिया को अपने–अपने म अनुसार व्याख्यायित किया है लेकिन वेदों के अनुसार जो सृष्टि–प्रक्रिया है पूर्णतः वैज्ञानिक एवं नीतिसम्मत है। इसलिए हम कह सकते हैं कि वेद ग्रंथ होने के साथ–साथ पूर्णतः वैज्ञानिक भी हैं।

संदर्भ

1. Encyclopedia American, 1981, Vol. 8, p. 162-164.
2. न्यायसूत्र 4/1/14.
3. न्यायसूत्र 4/1/22.
4. सांख्यकारिका 1/67.
5. न्यायसूत्र 4/1/29.
6. ऋग्वेद, मं. 8, अ. 7, सूक्त 27, मन्त्र 7.
7. ऋग्वेद, मं. 8, अ. 7, सूक्त 3, मन्त्र 1.
8. यजुर्वेद, 31/2.
9. छान्दोग्य उपनिषद् 6/2/2.
10. ऋग्वेद 1/164/20.
11. यजुर्वेद 40/8.
12. भारतीय दर्शन शब्द कोश, पृ. 273.
13. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सृष्टिविद्याविषय, पृ. 85.
14. ऋग्वेद, मं. 10, अ. 11, सू. 129, मन्त्र–1.
15. ऋग्वेद, मं. 10, अ. 11, सू. 129, मन्त्र–2.
16. ऋग्वेद, मं. 10, अ. 11, सू. 129, मन्त्र–3.
17. ऋग्वेद, मं. 10, अ. 12, सू. 191, मन्त्र–1.
18. संस्कृत–हिन्दी कोश, पृ. 96.

Scanned by CamScanner

19. ऋग्वेद मं. 10, अ. 12, सू. 191, मंत्र 2.
20. जैमिनीय ब्राह्मण, 2/10.
21. मैत्रायणी संहिता– 3/6/6.
22. ऋग्वेद मं. 10, अ. 12, सू. 191, मन्त्र–3.
23. निरूक्त 12/10.
24. माध्यन्दिनीय शतपथ 12/4/4/7.
25. शतपथ ब्राह्मण 6/1/2/3.
26. शतपथ ब्राह्मण 14/1/2/10.
27. मनुस्मृति 1/12–13.
28. शतपथ ब्राह्मण 6/1/1.
29. ऋग्वेद मं. 10, अ. 7, सू. 90, मंत्र–13–14.
30. वायुपुराण, 50/99.

संदर्भ ग्रंथ–सूची

1. ऋग्वेद संहिता – खण्ड 1–9, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1997.
2. ऋग्वेद (हिन्दी), रामगोविन्द त्रिवेदी, इण्डियन प्रेस पब्लिकेशन्स, प्रयाग, 1954.
3. छान्दोग्य उपनिषद, अनु. स्वामी गंभीरानन्द, अद्वैताश्रम, कलकत्ता, 1999.
4. जैमिनीय ब्राह्मण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई.
5. निरुक्त,अनु.एच.एम. भण्डारकर, भण्डारकर ऑरियन्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1985.
6. मनुस्मृति, पण्डित हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, सं. 2029.
7. मैत्रायणी संहिता, खण्ड 1–4, सम्पा. बुच ज्वेइट्स, जी.एम.बी.एच., 1970.
8. भारतीय दर्शन परिभाषा कोश, डॉ. दीनानाथ शुक्ल, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1993.
9. यजुर्वेद भाष्य, दयानन्द सरस्वती, अजमेर

Scanned by CamScanner

10. न्यायसूत्र, श्रीमन्महामुनि गौतम प्रणीत, अनुवादक, प्रो. राजाराम, बो मैशीन प्रेस, लाहौर, 1929.
11. वाचस्पत्यम् (बृहद् संस्कृताभिधानम्) श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाच चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, सं. 2024.
12. वायु पुराण, आनन्दाश्रम सीरीज, पूना.
13. शतपथ ब्राह्मण, सायण भाष्य, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई.
14. संस्कृत–हिन्दी कोश, शिवराम वामनराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदा वाराणसी, 2004.
15. सांख्यकारिका, श्री ईश्वरकृष्ण, व्याख्याकार– पं. थानेशचन्द्र उप्रेती, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1995.
16. Encyclopedia Americana, Francis Lieber, Dansbury, Conn Scholastic Library, America, 2006.

Scanned by CamScanner